

# श्रीमद्भगवद्गीता का दार्शनिक विवेचन

(तत्त्वमीमांसा, प्रमाणमीमांसा तथा आचारमीमांसा के संदर्भ में)

विकास सिंह<sup>१</sup>

[vikas.sing.gautam@gmail.com](mailto:vikas.sing.gautam@gmail.com)

सार

इस शोध पत्र में श्रीमद्भगवद्गीता के दार्शनिक पक्ष को उद्घाटित करते हुए शांकरभाष्य तथा गूढार्थदीपिका टीका के आधार पर इसकी तत्त्वमीमांसा, प्रमाणमीमांसा तथा आचारमीमांसा का विशद विश्लेषण किया जायेगा। तत्त्वमीमांसा की दृष्टि से यदि श्रीमद्भगवद्गीता का मूल्यांकन किया जाये तो परमेश्वर की दो प्रकृतियों परा-अपरा का वर्णन गीता में मिलता है। अपरा को क्षेत्र तथा परा को क्षेत्रज्ञ कहते हैं। के १३वें अध्याय में क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ के आधार पर तत्त्व समीक्षा देखने को मिलती है। श्रीमद्भगवद्गीता दो प्रकार के ज्ञान को स्वीकार करती है- तार्किक एवं आध्यात्मिक। तार्किक ज्ञान से वस्तुओं के बाह्य स्वरूप का ज्ञान होता है जबकि आध्यात्मिक ज्ञान द्वैत का नाश करता है। गीता के द्वितीय अध्याय में ज्ञान प्राप्ति की पद्धति का वर्णन किया गया है। श्रीमद्भगवद्गीता की आचारमीमांसा का आधार श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को दिया गया कर्मसन्देश है। कोई भी मनुष्य क्षण भर के लिये बिना कर्म किये हुए नहीं रह सकता। निष्काम कर्म से स्थितप्रज्ञ की अवस्था प्राप्त होती है। कर्म के साथ ज्ञान तथा भक्ति का भी पाठ गीता सबको पढ़ाती है। इस तरह पुरुषोत्तम की प्राप्ति के तीन मार्ग हैं- ज्ञानमार्ग, भक्तिमार्ग तथा कर्ममार्ग।

**Keywords:** श्रीमद्भगवद्गीता, तत्त्वमीमांसा, आचारमीमांसा, प्रमाणमीमांसा, सत्-असत्, आत्मा-ब्रह्म, पर-अपरा प्रकृति, क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ, पुरुषोत्तम, तार्किक-आध्यात्मिक ज्ञान, ज्ञान प्राप्ति की पद्धति, स्थितप्रज्ञ, अर्थार्थी, अति, जिज्ञासु एवं ज्ञानी चार प्रकार के भक्त, निष्काम कर्म, स्वाभाविक कर्म।

वशीविभूषितकरन्नवनीरदाभात् पीताम्बरादरुणबिम्बफलाधरोष्ठात्।

पूर्णेन्दुसुन्दरमुखादरविन्दनेत्रात् कृष्णात्परं किमपि तत्त्वमहं न जाने॥

काण्डत्रयात्मकं शास्त्रं गीताख्यम् येन निर्मितम्।

आदिमध्यान्तषट्केषु तस्मै भगवते नमः॥<sup>२</sup>

वैदिकज्ञान की सारभूता श्रीमद्भगवद्गीता को गीतोपनिषद् भी कहा जाता है। भगवद्गीता का मर्म भगवद्गीता में ही व्यक्त है। गीता का उपदेश कुरुक्षेत्र की रणभूमि पर मृत्यु के आँगन में जीवनसंगीत के समान,

<sup>१</sup> पीएच.डी. शोध-छात्र, विशिष्ट संस्कृत अध्ययन केन्द्र, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली-११००६७

<sup>२</sup> गूढार्थदीपिका, पृ. ९०१.

विषाद भरे अर्जुन को श्रीकृष्ण द्वारा दिया गया क्योंकि अर्जुन भगवान् का भक्त, प्रत्यक्ष शिष्य तथा घनिष्ठ मित्र था। अतः एव जिसमें अर्जुन सम गुण पाये जाते हैं, वही गीता को सबसे अच्छी तरह समझ सकता है। श्रीमद्भगवद्गीता के दार्शनिक पक्ष को हम निम्न बिन्दुओं के आधार पर समझ सकते हैं – तत्त्वमीमांसा, प्रमाणमीमांसा तथा आचारमीमांसा।

## श्रीमद्भगवद्गीता की तत्त्वमीमांसा

तत्त्वमीमांसा से आशय दर्शन के उस भाग से है जिसमें सत्ता, यथार्थ तथा ज्ञान की प्रकृति का मूल्यांकन किया जाता है। श्रीमद्भगवद्गीता की दार्शनिकता का महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है कि जो असत् है, उसका भाव नहीं हो सकता और जो सत् है उसका कभी अभाव नहीं हो सकता।<sup>१</sup> जिस पदार्थ को विषय करने वाली बुद्धि बदलती नहीं वह पदार्थ सत् है और जिसको विषय करने वाली बुद्धि बदलती हो वह असत् है।<sup>२</sup> आत्मा अर्थात् ब्रह्म सत् है, वह अविनाशी है। इसी से सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है।<sup>३</sup> नाशरहित, अप्रमेय, नित्यस्वरूप जीवात्मा के सब शरीर नाशवान् अर्थात् असत् हैं।<sup>४</sup>

गीता परमेश्वर की दो प्रकृतियों पर-अपरा का वर्णन करती है। अपरा को क्षेत्र तथा परा को क्षेत्रज्ञ कहते हैं। अपरा प्रकृति पृथ्वी, जल, वायु, आकाश, मन, बुद्धि, अहंकार इन आठ भागों में विभाजित है।<sup>५</sup> पृथ्वी आदि पाँच से अपंचीकृत महाभूत अर्थात् पृथ्वी, अग्नि, जल, वायु, आकाश संज्ञक पाँच तन्मात्राएँ लक्षित हैं। मन का कारण लक्षित है। क्योंकि पञ्चमात्राओं के समीप है। बुद्धि शब्द तो अहंकार के कारण महत् तत्त्व में मुख्य वृत्ति से ही अर्थवान् है। अहंकार शब्द से समस्त वासनाओं से वासित अविद्यात्मक अव्यक्त लक्षित होता है। क्योंकि

<sup>१</sup> नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः। गीता, २.१५<sup>१/५</sup>

<sup>२</sup> यद्विषया बुद्धिः न व्यभिचरति तत् सत्, यद्विषया बुद्धिः व्यभिचरति तद् असत् इति। शांकरभाष्य, पृ. ३५.

<sup>३</sup> अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम्। गीता, २.१६<sup>१/५</sup>

<sup>४</sup> अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः। अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारतः॥ गीता, २.१८

<sup>५</sup> वही, ७/४

उसका प्रवर्तकत्वादि असाधारण धर्मों से योग है। इस तरह यह अपरा प्रकृति माया नाम की परमेश्वर की अनिर्वचनीय स्वभाव वाली त्रिगुणात्मिका शक्ति आठ प्रकार से भेद को प्राप्त हुई।<sup>१</sup>

अपरा प्रकृति जड़वर्गरूपा चेतनो उपभोगात् और संसार की बन्धनरूपा होने से निकृष्ट है। इस अष्टधा से भिन्न क्षेत्रज्ञ लक्षणा अर्थात् जीवभूताचेतनात्मिका परं ब्रह्म की विशुद्ध पर प्रकृति है। क्षेत्रज्ञ लक्षणा जीवभूता सर्वान्तर प्रविष्ट प्रकृति से ही यह सम्पूर्ण अचेतनजातजगत् धारण किया जाता है। बिना जीव के जड़ पदार्थ को धारण नहीं किया जाता।<sup>२</sup>

इन दोनों प्रकृतियों के द्वार कार्यलिंगक कार्यहेतुक अनुमान से प्रमाणित होत है कि द्विविधा प्रकृति से ही सम्पूर्ण चेतन-अचेतन भूत योनि वाले हैं। ये दोनों प्रकृतियाँ ब्रह्म की उपाधि हैं। इनके माध्यम से सम्पूर्ण वा प्रलय ब्रह्म करता है। अतः मूल कारण परं ब्रह्म है।<sup>३</sup> अर्थात् माया का आश्रय वा विषय होने से स्वाप्रिक मायिकप्र प्रपञ्च का उपादान कारण द्रष्टा व निमित्त ईश्वर है। क्योंकि माया से ही सम्पूर्ण जगत् के जन्म स्थिति और भंग नाश करने में ईश्वर समर्थ अहै, अतः परमात्मा से इतर जगत् का कारण कुछनहीं है। समस्त प्राणी परमेश्वर में दीर्घ तन्तुओं में वस्त्र की भाँति सूत्र में मणियों की भाँति पिरोए हुए हैं।<sup>४</sup>

जो कभी नष्ट नहीं होता (न क्षरति इति ब्रह्म) अर्थात् अक्षर ही परं ब्रह्म है। जो सबमें व्याप्य हो (अश्रुते व्याप्नोति सर्वमिति अक्षरम्) प्रशासन एवं सम्पूर्ण जड़-वर्ग को धारण करने के कारण अक्षर परमात्मा है।<sup>५</sup> ब्रह्म सगुण व निर्गुण दो प्रकार का है। निर्गुण ब्रह्म में ध्याननिष्ठ होकर इसी जीवन में आत्मतत्त्व का साक्षात्कार कर सद्योमुक्ति को प्राप्त होते हैं, जबकि सगुण ब्रह्म की उपासना में रत रहने से क्रममुक्ति प्राप्ति होती है। किन्तु दोनों मुक्ति के बाद निष्काम कर्मयोग से ही योगी परमात्मा के साथ सदैव युक्त रहता है।<sup>६</sup>

<sup>१</sup> शांकरभाष्य, पृ. १९८। गूढार्थदीपिका, पृ. ४५६

<sup>२</sup> गूढार्थदीपिका, पृ. ४५६

<sup>३</sup> वही, पृ. ४५७

<sup>४</sup> शांकरभाष्य, पृ. १९९

<sup>५</sup> गूढार्थदीपिका, पृ. ४९२

<sup>६</sup> वही, पृ. ५२०

जड़ जगत् से भिन्न चेतन ब्रह्म को अव्यक्त प्रकृति से परे विद्यमान रहने वाले सचेतन तत्त्व को अक्षर ब्रह्म कहते हैं।<sup>१</sup> प्रकृति क्षर तथा पुरुष अक्षर है एवं इनसे ऊपर पुरुषोत्तम अर्थात् परम्-ब्रह्म है।<sup>२</sup> पुरुष प्रकृति में स्थित होकर ही प्रकृति से उत्पन्न गुणों का भोग करता है। यह गुणों का सङ्ग ही इसके अच्छे – बुरे योनियों में जन्म लेने के कारण है।<sup>३</sup>

गीता के १३ वें अध्याय में क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ के आधार पर तत्त्व समीक्षा देखने को मिलती है। शरीर क्षेत्र है तथा उसको जानने वाला पुरुष क्षेत्रज्ञ कहलाता है।<sup>४</sup> क्षतत्राणात् क्षयात् क्षरणात् क्षत्रवद् वा अस्मिन् कर्मफलनिवृत्ते क्षत्रमिति।<sup>५</sup> क्षेत्रज्ञ परमपुरुष है।<sup>६</sup> सब क्षेत्रों में जो एक स्वप्रकाश, चैतन्यरूप, नित्य, विभु क्षेत्रज्ञ है, ऐसा वह असंसारी, अद्वितीय, ब्रह्मानन्दरूप परमात्मा ही क्षेत्रज्ञ है। क्षेत्र मायाकल्पित है अत एव मिथ्या है और क्षेत्रज्ञ परमार्थ सत्य है तथा उस क्षेत्रभ्रम का अधिष्ठान है। शांकरभाष्य में जीव – अजीव अभेद को स्वीकार किया गया है। निरीश्वरवादी सांख्य के २४ तत्त्वों तथा वैशेषिक के आत्मा के ८ धर्मों का मिश्रण क्षेत्र में माना गया है। पाँच महाभूत, अहंकार, बुद्धि, मूल प्रकृति, दस इन्द्रियाँ, मन और पाँच इन्द्रियों के विषय (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध) तथा इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, स्थूल देह का पिण्ड, चेतना व धृति इस प्रकार विकारों सहित यह क्षेत्र कहा गया है।<sup>७</sup>

<sup>१</sup> परस्तस्मान् भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः। यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति॥

अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम्। यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम। गीता, ८/२०-२१

<sup>२</sup> यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः। अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः॥ वही, १५/१८

<sup>३</sup> पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान्गुणान्। कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु॥ वही, १३/२१

<sup>४</sup> इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते। एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः॥ वही, १३/१

<sup>५</sup> शांकरभाष्य, पृ. २९९

<sup>६</sup> क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत। क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम॥ गीता, १३/२

<sup>७</sup> महाभूतान्यहङ्कारो बुद्धिरव्यक्तमेव च। इन्द्रियाणि दशैकं च पञ्च चेन्द्रियगोचराः॥

इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं सङ्घातश्चेतना धृतिः। एतत्क्षेत्रं समासेन सविकारमुदाहृतम्॥ गीता, १३/५-६

महाभूत से लेकर धृतिपर्यन्त पदार्थ विकारसहित होने से सविकार हैं अतः यह विकारों का साक्षी नहीं है, क्योंकि यह स्वयं अपनी उत्पत्ति एवं विनाश को नहीं देख सकता।<sup>१</sup> 'यह ज्ञेय है, जिसको जानकर मनुष्य अमरतत्त्व को प्राप्त करता है। वह अनादिवाला ब्रह्म न सत् है, न असत् ही। वह सब ओर हाथ-पैरवाला, सब ओर नेत्र, सिर, मुख वाला तथा कान वाला है, क्योंकि वह संसार में सबको व्याप्त करके स्थित है। वह संपूर्ण इन्द्रियों के विषयों को जानने वाला है परन्तु निरीन्द्रिय है। आसक्ति रहित होने पर भी सबका धारण-पोषण करने वाला और निर्गुण होने पर गुणों को भोगनेवाला है। सूक्ष्म होने से अविज्ञेय है तथा अति समीप में व दूर में स्थित वही है। वह जाननेयोग्य परमात्मा परमविष्णु रूप से भूतों को धारण-पोषण करने वाला, रूद्र रूप से संहार करने वाला तथा ब्रह्मरूप से सबको उत्पन्न करने वाला है। वह परमब्रह्म ज्योतियों का भी ज्योति एवं माया से अत्यन्त परे कहा जाता है। वह परमात्मा बोधस्वरूप, जानने योग्य एवं तत्त्व ज्ञान से प्राप्त करने योग्य है और सबके हृदय में विशेष रूप से स्थित है।'<sup>२</sup> यही क्षेत्रज्ञ कहलाता है।

जगत् में जितने भी स्थावर-जङ्गम प्राणी उत्पन्न होते हैं, वे सब क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ के संयोग से ही ज्ञात होते हैं।<sup>३</sup> महद् ब्रह्म अर्थात् प्रकृति ईश्वर की योनि है, वह उसमें बीज डालता है जिससे सभी जड़-चेतन जन्म लेते हैं।<sup>४</sup> प्रकृति से उत्पन्न हुए सत्त्व, रज व तम ये सभी गुण निर्विकार देही को देह में बांधते हैं।<sup>५</sup> सत्त्व सुख में प्रवृत्त करता है, रज कर्म में लगा देता है और तम ज्ञान नष्ट करके मनुष्य को प्रमादग्रस्त कर देता है।<sup>६</sup> इन तीनों गुणों द्वारा विचलित न किया गया जो उदासीन होकर स्थिर रहता है और विकारग्रस्त नहीं होता।<sup>७</sup> परमात्मा की जो अनन्य भक्तियोग से सेवा करके भी वह तीन गुणों से पार होकर ब्रह्मतत्त्व को पा लेता है।<sup>८</sup> १५ वें अध्याय

<sup>१</sup> गूढार्थदीपिका, पृ. ६५५

<sup>२</sup> गीता, १३/१२-१८

<sup>३</sup> यावत्सञ्जायते किञ्चित्सत्त्वं स्थावरजङ्गमम्। क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्तद्विद्धि भरतर्षभ॥ गीता, १३/२६

<sup>४</sup> मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन्गर्भं दधाम्यहम्। सम्भवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत॥ गीता, १४/३

<sup>५</sup> सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसम्भवाः। निबद्धान्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम्॥ गीता, १४/५

<sup>६</sup> सत्त्वं सुखे सञ्जयति रजः कर्मणि भारत। ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे सञ्जयत्युत॥ गीता, १४/९

<sup>७</sup> समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः। तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः॥ गीता, १४/२४

<sup>८</sup> मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते। स गुणान्समतीत्यैतान्ब्रह्मभूयाय कल्पते॥ गीता, १४/२६

अध्याय के आदि श्लोक में संसारवृक्ष की अवयव सम्बंधी कल्पना की गई है। इस संसारवृक्ष का मूल इन्द्रियाँ अव्यक्त हैं। अव्यक्त रूप ब्रह्म से ही यह जगत् उत्पन्न हुआ है तथा उसी के अनुग्रह से वर्धित हुआ है। बुद्धि इस संसारवृक्ष की प्रधान शाखा है। इन्द्रियाँ इसके कोटर, पंचमहाभूत इसकी विशाखायें, शब्दादि पाँचविषय इसके पत्ते, धर्म-अधर्म इसके सुन्दर पुष्प, सुख-दुःख इसके फल हैं। यह ब्रह्मवृक्ष सनातन है। यह सब भूतों का उपजीव्य है। आत्मज्ञान अर्थात् अहं ब्रह्मास्मि के द्वारा समूल इसे काटकर आत्मस्वरूपा गति को प्राप्त कर मोक्षपद से पुनः यहाँ नहीं लौटता।<sup>१</sup>

जीव लोक में पुरुषोत्तम का अंश सनातन जीवरूप है, जो प्रकृति में स्थित मन सहित पाँच इन्द्रियों को स्वयं में जोड़ लेता है। जीव जब शरीर धारण करता है या त्यागता है, तब वह इन इन्द्रियों और मन के साथ जाने से शरीर धारण करता है और जीव विषयों का सेवन करता है। ज्ञानी अनासक्त रहने से आत्मतत्त्व को जान लेते हैं, अज्ञानी नहीं जान पाते हैं।<sup>२</sup> पुरुषोत्तम क्षर अर्थात् नाशवान जड़वर्ग क्षेत्र से तो सर्वथा अतीत है और अक्षर अर्थात् माया संज्ञक अव्याकृत से भी उत्तम है। अतः लोक व वेद में पुरुषोत्तम कहा गया है।<sup>३</sup> ऐसा जो इसे जान लेता है, वह सब कुछ जान लेता है।<sup>४</sup>

## श्रीमद्भगवद्गीता की प्रमाणमीमांसा

श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार मानव अज्ञानवश बन्धन की अवस्था में पड़ जाता है। अज्ञान का नाश ज्ञान से होता है। अतः मोक्ष प्राप्ति के लिये यहाँ ज्ञान कि महत्ता पर प्रकाश डाला गया है। शंकराचार्य गीता में ज्ञान योग की प्रधानता को स्वीकार करते हैं। गीता दो प्रकार के ज्ञान को स्वीकार करती है – तार्किक एवं आध्यात्मिक ज्ञान। तार्किक ज्ञान वस्तुओं के बाह्य रूप को देखकर उनके स्वरूप की चर्चा बुद्धि के द्वारा करता है। इस ज्ञान में

<sup>१</sup> गूढार्थदीपिका, पृ. ७१२

<sup>२</sup> ममैवांशो जीवलोकं जीवभूतः सनातनः। मनःषष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति॥

शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः। गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवाशयात्॥

श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं च रसनं घ्राणमेव च। अधिष्ठाय मनश्चायं विषयानुपसेवते॥ गीता, १५/७-९

<sup>३</sup> यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः। अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः॥ गीता, १५/१८

<sup>४</sup> यो मामेवमसम्मूढो जानाति पुरुषोत्तमम्। स सर्वविद्भूजति मां सर्वभावेन भारत॥ गीता, १५/१९

ज्ञाता व ज्ञेय में द्वैत विद्यमान रहता है, जबकि आध्यात्मिक ज्ञान शास्त्रों के अध्ययन से होने वाला आत्मा का ज्ञान है।<sup>१</sup>

गीता के द्वितीय अध्याय में ज्ञान प्राप्ति की पद्धति का वर्णन किया गया है। सांसारिक विषयों के प्रति आसक्ति का नाश न होने के कारण प्रथमनस्वभाववाली इन्द्रियाँ यत्न करते हुए बुद्धिमान पुरुष के मन को बलात् हर लेती हैं। अतः उन सब इन्द्रियों को वश में करके समाहित चित्त वाले साधक की बुद्धि स्थिर हो जाती है। विषयों का चिन्तन करने वाले पुरुष की उन विषयों में आसक्ति हो जाती है। आसक्ति से कामना उत्पन्न होती है। कामना से अर्थात् किसी भी कारण वश विच्छिन्न हुई इच्छा से क्रोध, क्रोध से सम्मोह अर्थात् कर्तव्याकर्तव्यविषयक अविवेक, इससे स्मृति का विभ्रम होता है, स्मृति विभ्रम से बुद्धि अर्थात् ज्ञान शक्ति का नाश हो जाता है। नाश होने से अन्तःकरण की बुद्धि का नाश हो जाता है, जिससे पुरुष का नाश अर्थात् वह पुरुषार्थ में अयोग्य हो जाता है।<sup>२</sup> परन्तु अपने अधीन किये हुए अन्तःकरण वाला साधक अपने वश में की हुई राग-द्वेष से रहित इन्द्रियों द्वारा विषयों में विचरण करता हुआ अन्तःकरण की प्रसन्नता को प्राप्त होता है, जिससे सम्पूर्ण दुःखों का अभाव हो प्रसन्नचित्त कर्मयोगी की बुद्धि शीघ्र ही सब ओर से हटकर एक परमात्मा में स्थिर हो जाती है।<sup>३</sup> न जीते हुए मन व इन्द्रियों वाले पुरुष में निश्चयात्मिका बुद्धि नहीं होती और उस अमुक्त मनुष्य के अन्तःकरण में भावना भी नहीं रहती, जिससे उसे शान्ति नहीं मिलती। बिना शान्ति के सुख नहीं मिलता।<sup>४</sup>

<sup>१</sup> भारतीय दर्शन की रूपरेखा, पृ. ६८-६९

<sup>२</sup> यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः। इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः॥

तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः। वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥

ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते। सङ्गात्सञ्जायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते॥

क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः। स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥ गीता, २/६०-६३

<sup>३</sup> रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्। आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति॥

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते। प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते॥ गीता, २/६४-६५

<sup>४</sup> नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना। न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम्॥ गीता, २/६६

अतः जिस पुरुष की इन्द्रियाँ, इन्द्रियों के विषयों से सब प्रकार से निग्रह की हुई हैं, उसी की बुद्धि स्थिर है।<sup>१</sup> इससे सिद्ध है कि जो व्यक्ति ज्ञान चाहता है, उसे शरीर, मन व इन्द्रियों को शुद्ध रखना नितान्त आवश्यक है। ऐसा व्यक्ति स्थितप्रज्ञ है, जिसने इन तीनों पर विजय प्राप्त की हो। कछूए का उदाहरण देकर समझाया गया है कि जैसे कछुआ अपने अङ्गों को सब ओर से समेट लेता है, वैसे ही स्थितप्रज्ञ पुरुष इन्द्रियों के विषयों से इन्द्रियों को सब ओर से हटाकर स्थिर बुद्धि हो जाता है।<sup>२</sup>

ज्ञान के समान पवित्र करने वाला इस जगत् में कुछ भी नहीं है। कर्मयोग या समाधियोग द्वारा बहुतकाल में भले प्रकार शुद्धान्तःकरण हुआ मुमुक्षु स्वयं अपनी आत्मा में उसे पा लेता है।<sup>३</sup> जिसका मन अपने वश में है, जो जितेन्द्रिय एवं विशुद्ध अन्तःकरण वाला है और सम्पूर्ण प्राणियों का आत्मरूप परमात्मा ही जिसका आत्मा है, ऐसा कर्मयोगी कर्म करता हुआ भी लिप्त नहीं रहता।<sup>४</sup> इस तरह साधक आत्मा व ईश्वर में तादात्म्य की सत्ता मानता है। कर्मयोगी ममत्व बुद्धि से रहित केवल इन्द्रिय, मन, बुद्धि व शरीर द्वारा भी आसक्ति को त्यागकर अन्तःकरण की शुद्धि के लिये कार्य करते हैं।<sup>५</sup> जिस काल में न तो इन्द्रियों के भोगों में और न कर्मों में ही पुरुष आसक्त होता है, उस काल में सर्व संकल्पों का त्यागी पुरुष योगारूढ अर्थात् ज्ञान प्राप्त करने वाला कहा जाता है।<sup>६</sup>

योगसाधना से निरुद्ध किया हुआ, सब ओर से चञ्चलता रहित चित्त समय उपरत होता है तथा जिस काल में समाधि द्वारा स्वच्छ हुए अन्तःकरण से परम चैतन्य ज्योति स्वरूप आत्मा का साक्षात् करता है, वह

<sup>१</sup> तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः। इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥ गीता, २/६८

<sup>२</sup> यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः। इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥ गीता, २/५८

<sup>३</sup> योगसन्न्यस्तकर्माणं ज्ञानसञ्छिन्नसंशयम्। आत्मवन्तं न कर्माणि निबध्नन्ति धनञ्जय॥ गीता, ४/४१

<sup>४</sup> योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः। सर्वभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते॥ गीता, ५/७

<sup>५</sup> कायेन मनसा बुद्ध्या केवलैरिन्द्रियैरपि। योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्गं त्यक्त्वात्मशुद्धये॥ गीता, ५/११

<sup>६</sup> यदा हि नेन्द्रियेषु न कर्मस्वनुषज्जते। सर्वसङ्कल्पसन्न्यासी योगारूढस्तदोच्यते॥ गीता, ६/४

अपने आप में संतुष्ट हो जाता है।<sup>१</sup> योगी, तपस्वियों, शास्त्रज्ञों एवं सकाम कर्म करने वालों से श्रेष्ठ है। सम्पूर्ण योगियों में श्रद्धवान् ही परमात्मा अंशभूत अन्तरात्मा से उसे भजता है।<sup>२</sup>

संसार में अर्थार्थी, अति, जिज्ञासु एवं ज्ञानी ये चार प्रकार के भक्त जन होते हैं, उसमें जो यथार्थ तत्त्व को जाननेवाला है वह तत्त्ववेत्ता होने के कारण सदा पुरुषोत्तम में अवस्थित है और उसकी दृष्टि में अन्य किसी भी भजने योग्य वस्तु का अस्तित्व न रहने के कारण वह केवल एक परमात्मा में ही अनन्य भक्तिवाला होता है।<sup>३</sup> जिस समय द्रष्टा तीन गुणों से अत्यन्त परे सच्चिदानन्दघन स्वरूप परमात्मा को तत्त्वतः जानता है, उस समय वह ब्रह्म स्वरूप को प्राप्त करता है।<sup>४</sup> काम, क्रोध, लोभ ये तीन नरक के द्वार आत्मा के नाशक अर्थात् अधोगति में ले जाने वाले हैं। अतः एव इन तीनों से मुक्त पुरुष स्व कल्याण के लिए आचरण करता हुआ परमगति को पाता है।<sup>५</sup>

कर्त्तव्याकर्त्तव्य की व्यवस्था में शास्त्र ही पुरुष के लिये प्रमाण है अर्थात् ज्ञान प्राप्ति का साधन है। अतः शास्त्र विधान से कही हुई बात समझकर अर्थात् आज्ञा का नाम विधान है। शास्त्रद्वारा ऐसा आज्ञा दी जाये कि यह कार्य कर, यह मत कर वह शास्त्र विधान है उससे बताये हुए स्वकर्म को जानकर ही उसके लिए इस कर्मक्षेत्र में कार्य करना उचित है।<sup>६</sup> जो शास्त्रों द्वारा वर्जित घोर तप करते हैं, दम्भ व अंहकार सी संयुक्त होते हैं तथा

१ यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया। यत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति॥ गीता, ६/२०

२ तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन॥

योगिनामपि सर्वेषां मद्भूतेनान्तरात्मना। श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः॥ गीता, ६/४६-४७

३ चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन। आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ॥

उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्। आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम्॥ गीता, ७/१६-१७

४ नान्यं गुणेभ्यः कर्तारं यदा द्रष्टानुपश्यति। गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भूतं सोऽधिगच्छति॥ गीता, १४/१९

५ त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः। कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्॥

एतैर्विमुक्तः कौन्तेय तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः। आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततो याति परां गतिः॥ गीता, १६/२१-२२

६ तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ। ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि॥ गीता, १६/२४

काम, राग और बल से अन्वित होते हैं। ऐसे अविवेकी आसुरी लोग देहास्थित पंचमहाभूतों सहित उनमें रहने वाले परमात्मा को भी सताते हैं।<sup>१</sup>

सिद्धि को प्राप्त पुरुष ब्रह्म को कैसे प्राप्त करता है? विशुद्ध बुद्धि से युक्त ब्रह्मविद् धैर्यपूर्वक शरीर और इन्द्रियों के संघात का संयम कर शब्दादि विषयों का त्याग कर, राग और द्वेष का परित्याग कर, एकान्तवासी, मिताहारी और वाणी, शरीर तथा मन का संयमवाला होकर सर्वदा ध्यानयोग में तत्पर हो वैराग्य का आश्रय ग्रहण कर अहंकार, बल, दर्प, काम, क्रोध व परिग्रह का त्यागकर निर्मम और शान्त होकर ही ब्रह्मसाक्षात्कार के लिए समर्थ होता है।<sup>२</sup>

## श्रीमद्भगवद्गीता में आचारमीमांसा

गीता में श्रीकृष्ण ने अर्जुन को कर्म का सन्देश दिया है। बालगंगाधर तिलक 'गीता रहस्य' नामक गीता की व्याख्या कर्मयोग शास्त्र के रूप में करते हैं। निःसन्देह कोई भी मनुष्य किसी भी समय में क्षण भर भी बिना कर्म किये हुए नहीं रह सकता, क्योंकि सारा मनुष्य समुदाय प्रकृतिजनित गुणों द्वारा परवश हुआ कर्म करने के लिये बाध्य किया जाता है।<sup>३</sup> गीता का प्रतिपाद्य 'निष्काम कर्म' को प्रस्तुत करना है। मानव का कर्म करने में ही अधिकार है, उसके फल में नहीं। उसे कर्मों के फल का हेतु नहीं बनाना चाहिए।<sup>४</sup>

जो मूढबुद्धि मनुष्य समस्त इन्द्रियों को हठपूर्वक ऊपर से रोककर मन से उन इन्द्रियों के विषयों का चिंतन करता रहता है, वह मिथ्याचारी है। किन्तु जो पुरुष मन से इन्द्रियों को वश में करके अनासक्त हुआ समस्त इन्द्रियों द्वारा कर्मयोग का आचरण करता है वही श्रेष्ठ है। शास्त्रविहित कर्म ही मानव मात्र को करना

<sup>१</sup> अशास्त्रविहितं घोरं तप्यन्ते ये तपो जनाः। दम्भाहङ्कारसंयुक्ताः कामरागबलान्विताः॥

कर्षयन्तः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः। मां चैवान्तःशरीरस्थं तान्विद्ध्यसुरनिश्चयान्॥ गीता, १७/५-६

<sup>२</sup> सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च। मूर्ध्नाध्यायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम्॥

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्। यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्॥ गीता, ८/१२-१३

<sup>३</sup> न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्। कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः॥ गीता, ३/५

<sup>४</sup> कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन। मा कर्मफलहेतुर्भूमा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥ गीता, २/४७

चाहिए। कर्म न करने की अपेक्षा, कर्म करना श्रेष्ठ है।<sup>१</sup> यज्ञार्थ कर्म को छोड़कर दूसरे कर्मों से, कर्म करनेवाला, अधिकारी मानव समुदाय कर्मबन्धनयुक्त हो जाता है, पर ईश्वरार्थ किये जाने वाले कर्म से नहीं सृष्टि के आदिकाल में यज्ञसहित प्रजा को अर्थात् तीनों वर्णों को रचकर जगत् के रचयिता प्रजापति ने कहा कि इस इष्ट यज्ञ से तुम लोग प्रसव, वृद्धिलाभ करो। यह यज्ञ तुम्हें इष्ट कामनाओं को देनेवाला होवे।<sup>२</sup> आसक्ति रहित कर्म करता हुआ मानव परमात्मा को प्राप्त करता है।<sup>३</sup> प्रकृति के गुणों से अत्यन्त मोहित हुए मनुष्य गुणों में और कर्मों में आसक्त रहते हैं, उन पूर्णतया न समझने वाले मन्दबुद्धि अज्ञानियों को पूर्णतया जानने वाला ज्ञानी विचलित न करे।<sup>४</sup>

जो पुरुष सब कर्मों को परमात्मा में अर्पण करके आसक्ति को त्यागकर कर्म करता है, वह पुरुष जल से कमल के पत्ते की भांति पाप से लिप्त नहीं रहता।<sup>५</sup> निष्काम कर्मयोगी परम ब्रह्म परमात्मा को शीघ्र ही प्राप्त हो जाता है।<sup>६</sup> सकाम कर्म मानव को बन्धन की ओर ले जाते हैं। परन्तु निष्काम कर्म इसके विपरीत उसे स्थितप्रज्ञ की अवस्था को प्राप्त कराने में सक्षम सिद्ध होते हैं। गीता में बताया गया है कि कर्म से संन्यास न लेकर कर्म के फलों से संन्यास लेना चाहिए।

सुख-दुःख, लाभ-हानि, जय-पराजय को समान समझकर अर्जुन को युद्ध में प्रवृत्त होने का उपदेश देते हुए<sup>७</sup> श्रीकृष्ण बताते हैं कि कर्मयोगी के लिये स्वकर्म ही स्वधर्म हैं। ईश्वर निर्मित चारों वर्णों के कर्म स्वभाव से

<sup>१</sup> कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्। इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते॥

यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन। कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते॥

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः। शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः॥ गीता, ३/६-८

<sup>२</sup> शांकरभाष्य, पृ. ८९

<sup>३</sup> तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर। असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः॥ गीता, ३/१९

<sup>४</sup> प्रकृतेर्गुणसम्मूढाः सज्जन्ते गुणकर्मसु। तानकृत्स्नविदो मन्दान्कृत्स्नविन्न विचालयेत्॥ गीता, ३/२९

<sup>५</sup> ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्घं त्यक्त्वा करोति यः। लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाभसा॥ गीता, ५/१०

<sup>६</sup> सन्न्यासस्तु महाबाहो दुःखमासुमयोगतः। योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म नचिरेणाधिगच्छति॥ गीता, ५/६

<sup>७</sup> सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ। ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि॥ गीता, २/३८

उत्पन्न गुणों द्वारा विभक्त किये गये हैं।<sup>१</sup> ब्राह्मण के स्वाभाविक कर्म हैं— शम, दम, तप, शौच, क्षमा, सरलता, ज्ञान, विज्ञान व आस्तिकता। शौर्य, तेज, धृति, कुशलता, युद्ध में पलायन न करना, दान और ऐश्वर्यभाव ये क्षत्रिय के स्वाभाविक कर्म हैं। कृषि, गोरक्षा व वाणिज्य ये वैश्य के स्वाभाविक कर्म हैं। तथा परिचर्यात्मक सेवारूप कर्म शूद्र का भी स्वाभाविक कर्म है।<sup>२</sup> जिससे आकाशादि भूतों की उत्पत्ति हुई है और जिससे यह सब दृश्यसमूह व्याप्त है। उस अन्तर्यामी भगवान् की अपने-अपने वर्णाश्रमानुसार श्रुति-स्मृति विहित कर्मों से अर्चना करके मानव सिद्धि को प्राप्त होता है।<sup>३</sup>

पुरुष मात्र को दोषयुक्त होने पर किसी भी सहज कर्म को नहीं त्यागना चाहिए क्योंकि धूम से अग्नि की भांति सभी कर्म किसी न किसी दोष से युक्त हैं।<sup>४</sup> सर्वत्र आसक्ति रहित बुद्धिवाला, स्पृहारहित और जीते हुए अन्तःकरण वाला पुरुष संन्यास के द्वारा ब्रह्मजन रूप परमसिद्धि को प्राप्त करता है।<sup>५</sup> शुद्धचित्तवाला संन्यास न शोक करता है और न ही इच्छा करता है, वह समस्त प्राणियों में समवर्ती होकर मेरी पराभक्ति को प्राप्त करता है। भक्ति के द्वारा वह पुरुषोत्तम को तब से जान लेता है। इसके पश्चात् उसमें प्रवेश कर जाता है। उसका आश्रय ग्रहण कर श्रौत- स्मार्त- सब प्रकार से शाश्वत और अव्यय पद को प्राप्त करता है।<sup>६</sup> चित्त विवेकबुद्धि से सब कर्मों कर्मों का पुरुषोत्तम में अर्पण कर उसको ही अपनाकर समत्वबुद्धिस्वरूप योग आश्रय ग्रहण निरन्तर उसमें ही

<sup>१</sup> ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च परन्तप। कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः॥ गीता, १/८/१

<sup>२</sup> शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च। ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम्॥

शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्। दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम्॥

कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम्। परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम्॥ गीता, १/८/२-४४

<sup>३</sup> यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्। स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥ गीता, १/८/६

<sup>४</sup> सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत्। सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः॥ गीता, १/८/८

<sup>५</sup> असक्तबुद्धिः सर्वत्र जितात्मा विगतस्पृहः। नैष्कर्म्यसिद्धिं परमां सन्न्यासेनाधिगच्छति॥ गीता, १/८/९

<sup>६</sup> ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति। समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्॥

भक्त्या मामभिजानाति यावन् यश्चास्मि तत्त्वतः। ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम्॥

सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्गपाश्रयः। मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम्॥ गीता, १/८/४-५६

चित्त लगाना चाहिए।<sup>१</sup> ज्ञानी मनुष्य को अंहकार ही कर्म करने से रोकता है। इस प्रकार पुरुषोत्तम में चित्त लगानेवाला संन्यासी पुरुषोत्तम के अनुग्रह से ही समस्त दुःख साधनों को पार कर जाता है और यदि अंहकारवश नहीं सुनता तो नष्ट हो जाता है।<sup>२</sup>

ज्ञान, भक्ति एवं कर्म के पावन संगम से सुशोभित *श्रीमद्भगवद्गीता* के दार्शनिक पक्ष के विवेचनोपरान्त कहा जा सकता है कि परा-अपरा प्रकृति पुरुषोत्तम से उत्पन्न है। इन्हीं के माध्यम से पुरुषोत्तम सृष्टि करते हैं। पुरुषोत्तम को प्राप्ति के तीन उपाय ज्ञानमार्ग, कर्ममार्ग एवं भक्तिमार्ग हैं। पुरुषोत्तम के प्रति श्रद्धा अनिवार्य व अपरिहार्य है। भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं-

“त्वमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।  
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥”<sup>३</sup>

\*\*\*\*\*

## शब्द-संक्षेप

श्री.गी.	<i>श्रीमद्भगवद्गीता</i>
शां.भा.	शांकरभाष्य ( <i>श्रीमद्भगवद्गीता</i> )
गू.दी.	गूढार्थदीपिका

## संदर्भ ग्रंथ-सूची

१. *श्रीमद्भगवद्गीता (श्लोकार्थसहित)*, गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. २०६३
२. *श्रीमद्भगवद्गीता (शांकरभाष्य हिन्दी अनुवाद सहित)*, गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. २०६१
३. *श्रीमद्भगवद्गीता (मधुसूदनसरस्वतीकृत-गूढार्थदीपिकासहित) भाग-२*, हिन्दीभाष्यानुवादक-मदनमोहन अग्रवाल, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, १९९६

<sup>१</sup> चेतसा सर्वकर्माणि मयि सन्न्यस्य मत्परः। बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चित्तः सततं भव॥ *गीता*, १८/५७

<sup>२</sup> मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि। अथ चेत्त्वमहङ्कारान्न श्रोष्यसि विनङ्क्ष्यसि॥ *गीता*, १८/५८

<sup>३</sup> *गीता*, १८/६२

४. पाठक, नन्दलाल, *भगवद्गीता : आधुनिक दृष्टि*, अमैया इन्सप्रिन्ग बुक्स पब्लिकेशन, २००५
५. सिन्हा, हरेन्द्र प्रसाद, *भारतीय दर्शन की रूपरेखा*, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, २००८